वैदिक बाल-शिक्षा

[द्वितीय भाग]

स्वामी विद्यानन्द 'विदेह'

वे द - सं स्था न, अजमेर

१९८०

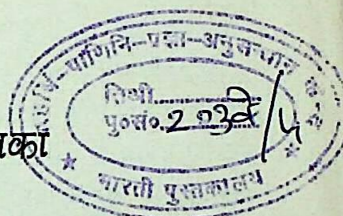
द्वितीय भाग

शिक्षा	पृष्ठ-संख्या	शिक्षा	पृष्ठ-संख्या

संस्थान-प्रकाशन-संख्या : २९

षष्ठ संस्करण : श्रावण २०३७ वि; अगस्त १९८० ई
(अब तक कुल १५,००० प्रतियां मुद्रित)

प्रकाशक : वेद-संस्थान, बाबू मोहल्ला, ब्यावर रोड, अजमेर
मुद्रक : वैदिक यन्त्रालय, अजमेर



द्वितीय भाग की भूमिका

पुत्रियो और पुत्रो,

आशा है, प्रथम भाग की तीस शिक्षाओं का तुमने अच्छी प्रकार अनुशीलन कर लिया है और सारी सूक्तियां शब्दार्थसहित कण्ठस्थ कर ली हैं।

अब यह दूसरा भाग तुम्हारे हाथों में आरहा है। इसमें भी वेदसूक्तियों के आधार पर तीस शिक्षाएं हैं।

ये वेद-शिक्षाएं तुम्हारे जीवनों को समुज्ज्वल और महतो महान् बनाएं और तुम्हें विश्वगगन में सूर्य-चन्द्र के समान चमकाएं, ऐसी शुभ, श्रेष्ठ कामनाओं के साथ,

तुम्हारा धर्मपिता
विद्यानन्द 'विदेह'

१ स्वराज्य

यतेमहि स्वराज्ये । ऋग्वेद ५.६६.६

बालवीरो !

स्वराज्य का अर्थ है स्व+राज्य=अपना राज्य। अपने राज्य में प्रत्येक नागरिक को अपने देश और राष्ट्र की सुसेवा तथा समुन्नति करने का निर्बाध अवसर प्राप्त है। अपने राज्य में प्रत्येक नागरिक के लिए अपनी राष्ट्रसेवा, क्षमता और योग्यता के आधार पर अपनी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं की सिद्धि के लिए भी पूर्ण क्षेत्र और अवसर प्राप्त होता है।

तुम्हारा देश स्वतन्त्र है और तुम्हारा राष्ट्र विशाल है। अपने देश को सर्वाङ्गीण सुन्दर तथा अपने राष्ट्र को सर्वतः सबल और सुपूर्ण बनाने के लिए तुम्हें बड़ा भारी प्रयत्न—पुरुषार्थ करना होगा। तुम अपने को उसके लिए अभी से तैयार करो। स्वराज्य में तुम्हारे लिए देशसेवार्थ सब द्वार खुले हुए हैं। देश को सुखी, सम्पन्न, और राष्ट्र को आदर्श, सर्वशक्तिमान् बनाने के लिए तुम्हें प्रत्येक दिशा में, प्रत्येक पार्श्व में, प्रत्येक क्षेत्र में कठोर तप करना होगा।

सबको सुशिक्षित बनाना है। स्वास्थ्य और स्वच्छता सिखानी है। कृषि और कला-कौशल की उन्नति करके देश को सब प्रकार आत्मनिर्भर और स्वावलम्बी बनाना है। साम्प्रदायिकता, प्रान्तीयता तथा कुरीतियों का निराकरण करके देशवासियों को निर्व्यसन, निर्विलास और धर्मात्मा बनाना है। देश और राष्ट्र की तुम्हें असंख्य सेवाएँ करनी हैं। अतः तुम अपने को अभी से सर्वगुणसम्पन्न और सर्वशक्तिमान् बनाने में लग जाओ।

तुम जितनी अधिक देशसेवा और राष्ट्रसाधना करोगे तुम उतने ही अधिक प्रतिष्ठित, सम्पन्न, उच्च और महान् बन जाओगे।

हम (स्व-राज्ये) स्व-राज्य में (यतेमहि) यत्न—पुरुषार्थ करें।

करें पुरुषार्थ स्वराज्य में।

फूलें फलें सुराज्य में।



२ दान

दाता राधांसि शुम्भति। ऋग्वेद १.२२.८

राष्ट्र-विभूतियो!

धन शोभा बढ़ाता है। धन पाकर मनुष्य अच्छे अच्छे मकान बनाता है, उद्यान [बाग़] लगाता है, मकानों और उद्यानों को सजाता है, फ़व्वारे लगवाता है, झाड़-फ़ानूस लटकाता है, दीवारों पर चित्रकारी कराता है, बढ़िया बढ़िया कपड़े पहनता है, शृङ्गार [फ़ैशन] करता है। इस प्रकार, धन मनुष्य की शोभा को बढ़ाता है।

परन्तु दानी धन की शोभा बढ़ाता है। धन सबकी शोभा बढ़ाता है पर दाता धन की शोभा बढ़ाता है। धन से सबकी शोभा बढ़ती है पर दान से धन की शोभा बढ़ती है। अतः, प्यारे बच्चो, तुम दानी बनो। धन कमाना और दूसरों की भलाई के लिए दान करना बड़ा ही उत्तम और प्रशंसनीय कार्य है। दीन-दुःखियों, अनाथों और असहायों की धन से सहायता करना बड़े पुण्य का काम है। देश, धर्म, राष्ट्र और संसार की सुसेवा के लिए धन देना धन की महिमा बढ़ाना है।

पात्रों और सुकार्यों में धनदान करने से धन घटता नहीं है, बढ़ता ही है। दानी को सबकी शुभकामनाएँ, शुभाशिषें और सद्भावनाएँ प्राप्त होती हैं, जिससे दाता के धन की सदा वृद्धि होती है। यह माना कि तुम अभी धन कमाते नहीं हो। तो भी तुम्हें अपने माता-पिता से जो थोड़े-बहुत पैसे मिलते हैं उनमें से कुछ न कुछ बचाकर तुम दान अवश्य किया करो। ऐसा करने से तुम्हारी विद्या, बुद्धि और

आयु की वृद्धि होगी।

(दाता) दाता (राधांसि) धनों को (शुभ्भति) सुशोभित करता है।

धन से शोभा मनुज की।
धन की शोभा दान।

३ धैर्य

धीतिमश्याः । ऋग्वेद २.३१.७

राष्ट्र-निधियो !

यह सूक्ति जितनी छोटी है उतनी ही महत्त्वपूर्ण है। (धीतिम्) धैर्य (अश्याः) धारण कर।

धीति, धैर्य, धीरज, धृति एक ही बात है। धैर्य में चार बातें होती हैं, तितिक्षा, साधना, प्रतीक्षा और संयम। तितिक्षा का अर्थ है कठिनाइयों को सहना, आपत्तियों को सहना, आपत्तियों का आभिमुख्य [मुक़ाबला] करना, विघ्न-बाधाओं से भिड़ना। **साधना** का अर्थ है निरन्तर उद्देश्यपूर्ति में कार्यरत रहना, सदा उद्योग करते रहना। **प्रतीक्षा** का अर्थ है समय की दीर्घता को समझना, समय की अवधि को निर्वाहना, निराश न होना। **संयम** का अर्थ है अपने-आप पर वशीकार करना।

प्रत्येक कार्य में विघ्न-बाधाएँ आती ही हैं, उन्हें सहना और पार करना ही चाहिए। प्रत्येक कार्य की सिद्धि के लिए समुचित प्रयास, पुरुषार्थ तथा उपाय भी होना ही चाहिए। प्रत्येक कार्य के पूर्ण होने में समय लगता है।

धीरे धीरे, रे मना ! धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय।

अनुकूल-प्रतिकूल परिणामों से प्रभावित होकर आपे से बाहर हो जाना अथवा संयम खो बैठना अच्छा नहीं। अपनी मन, बुद्धि, वाणी, आदि इन्द्रियों पर किसी भी अवस्था में सदा संयम रखना चाहिए।

तितिक्षा, साधना, प्रतीक्षा और संयम का अभ्यास करके धीर बनो। धीर ही ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं। धीर ही राज्य-साम्राज्यों की स्थापना और उनका सुसञ्चालन करते हैं। धीर ही आत्मानुभूति और ब्रह्मसाक्षात्कार करते हैं। धीर ही योगभूमियों पर चढ़ते हैं। धीर ही धनैश्वर्य सम्पादन करते हैं। धीर ही विद्याविभूति से विभूषित होते हैं। मेरे पुत्रो! धीर बनो। मेरी पुत्रियो! धीर बनो।

धर धीरज, रख ध्यान।
बनना यदि महान्।

४ प्रतिष्ठा

प्राग्ने तिष्ठ जनाँ अति। ऋग्वेद ८.६०.१६

प्यारे बच्चो!
तुम जानते हो, **प्रतिष्ठा** का क्या अर्थ है? **प्रतिष्ठा** का अर्थ है मान, सम्मान [इज्ज़त, आबरू]।

प्रतिष्ठा सभी चाहते हैं। प्रतिष्ठा सभी को प्रिय लगती है। वास्तव में, जीवन उसी का धन्य है जिसकी प्रतिष्ठा है। अप्रतिष्ठित जीवन भी, भला, कोई जीवन है! तुम प्रतिष्ठावान् बनो और अभी से अपने अन्दर प्रतिष्ठा का भाव उत्पन्न करो।

इस वेदसूक्ति में प्रतिष्ठा प्राप्त करने का बड़ा ही उत्तम उपाय

बताया गया है। इसके शब्दार्थ से ही तुम समझ जाओगे कि प्रतिष्ठा-प्राप्ति का रहस्य क्या है। (अग्ने) तेजस्विन् ! (जनान् अति) जनों को अतिक्रमण करके, सब जनों से आगे बढ़कर (प्र तिष्ठ) प्र-स्थित हो, प्रति-ष्ठा प्राप्त कर।

तेजस्वी बनकर प्रत्येक सुकार्य और सुगुणप्राप्ति में सबसे आगे रहो; तुम्हारी पदे-पदे प्रतिष्ठा होगी। पढ़ने-लिखने में, व्यायाम-प्राणायाम में, सन्ध्या-हवन में, खेल-कूद में, सभा-सत्संग में, विद्या-विज्ञान में, ज्ञान-ध्यान में, प्रणाम-नमस्कार में, स्वागत-आतिथ्य में, सबमें, सर्वत्र, सदा सर्वाग्र रहो, तुम्हें पद पद पर प्रतिष्ठा की उपलब्धि होगी।

दुष्कर्म और दुर्गुण से अप्रतिष्ठा होती है। सुकर्म और सद्गुण से प्रतिष्ठा मिलती है। तुम सब सुकर्मों और सद्गुणों में दूसरों से जितने अधिक आगे रहोगे उतनी ही अधिक तुम्हें प्रतिष्ठा प्राप्त होगी।

आगे रह, प्रतिष्ठा पा।
आगे बढ़कर नाम कमा।

५ घृतामृत

घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन्। सामवेद ६१३

मेरे बच्चो !

उपर्युक्त वेदसूक्ति एक बड़ी सुन्दर शिक्षा दे रही है। (मे) मेरी (चक्षुः) आंख में (घृतम्) घृत [है] और (मे) मेरे (आसन्) मुख में (अ-मृतम्) अ-मृत [है]।

घृत का लोकप्रसिद्ध अर्थ घी है। घृत स्निग्ध [चिकना] होता है। घृत का एक गुण स्निग्धता [चिकनाहट] है। घृत का दूसरा गुण है

तेज । घृत को जिस पदार्थ पर भी मल दें वही पदार्थ चिकना और सुन्दर हो जाता है । जिसमें भी स्निग्धता [स्नेह] तथा तेज [सुन्दरता] हो उसे घृत कहते हैं । अतः घृत के निम्नलिखित अर्थ हैं : घी, जल, तेज, सौन्दर्य, स्नेह, प्रेम, श्रद्धा, आस्था, स्निग्धता, भक्ति, वीर्य, विज्ञान, प्रकाश ।

अ-मृत का अर्थ है अ[नहीं]-मृत[मरा] । जिसे पान करके, मरे नहीं, जी उठे, जीवन आ जाए उसे अमृत कहते हैं । अतिसुखप्रद, शान्तिप्रद, प्रिय, मधुर, हितकारी जो पेय हो उसे भी अमृत कहते हैं । जो कभी मरे नहीं उसे भी अमृत कहते हैं । अत: अमृत के निम्न प्रकार अनेक अर्थ होते हैं : आत्मा, परमात्मा, परमाणु, शुद्ध जल, सुख, आनन्द, अन्न, दीर्घायुष्ट्व, मोक्ष, मुक्त, मृत्युराहित्य, सत्य, अविनाशी, मधु, सोम, माधुर्य ।

इस सूक्ति में **घृत** का अर्थ है स्नेह, और **अ-मृत** का अर्थ है मधुर—प्रिय वचन ।

अब तुम इस सूक्ति का मर्मार्थ समझ गए होगे । (मे चक्षुः घृतम्) मेरी दृष्टि में स्नेह है, और (मे आसन् अ-मृतम्) मेरे मुख में अमृत-मय, मधुर वचन है । जिसकी दृष्टि में प्रेम, और जिसकी वाणी में अमृत है उससे सारा संसार प्रेम करता है । जो स्नेहदृष्टि और मधुजिह्व होता है वह शत्रुञ्जय हो जाता है । जिसका कोई शत्रु न हो उसे शत्रुञ्जय कहते हैं । जिसे सब सखावत् स्नेह करते हैं उसी की शत्रुञ्जय संज्ञा होती है ।

शत्रुञ्जय बनना चाहते हो तो अपनी दृष्टि में स्नेह, और अपनी वाणी में अमृत भर लो ।

नयनों में सुस्नेह भर, मुख में अमृत धार ।
हृदय में बिठलाएगा तब 'विदेह' संसार ।

९ अक्रोध

मा हृणीयथाः । सामवेद २२७

मेरे प्यारे बच्चो !

क्रोध भयंकर दोष है । क्रोध भयंकर व्याधि है । क्रोध भयंकर रोग है । क्रोध भयंकर अभिशाप है । क्रोध से स्वभाव, चरित्र और स्वास्थ्य, तीनों ही को अपार हानि होती है । क्रोध से प्रकृति, वृत्ति और आकृति, तीनों ही विकृत हो जाती हैं । क्रोध से प्रकृति दूषित हो जाती है, वृत्ति शिथिल पड़ जाती है और आकृति क्रूर हो जाती है । क्रोध से स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, चरित्र क्षीण हो जाता है और स्वास्थ्य-सौन्दर्य नष्ट हो जाता है ।

क्रोधी उस मूर्ख के समान है जो अपने घर में स्वयं आग लगाता है । क्रोध वह अग्नि है जो, प्रथम, क्रोध करनेवाले को ही जलाती है । क्रोध का कारण, भले ही, कोई अन्य व्यक्ति हो, क्रोधी क्रोध करके, प्रथम, स्वयं अपने आपमें आग लगाता है और तत्पश्चात् दूसरों में आग भड़काता है । क्रोध अशालीन बनाता है । अशालीन दुर्भाग्यशाली, और शालीन सौभाग्यशाली ।

क्रोध में किया निश्चय सदा अशुद्ध [ग़लत] होता है । आवेश में किया कार्य सदा बिगड़ता है । क्षोभ में बोला वचन दुष्परिणाम लाता है । क्रोध की अवस्था में कभी कोई निर्णय न करो । आवेश में कदापि कोई कार्य न करो । क्षोभ में मुख से कोई वचन न निकालो ।

क्रोध सबसे बड़ा शत्रु है । क्रोध शत्रुता का निर्माता है । क्रोध भारी दुर्बलता है । क्रोध को निकाल बाहर कर दो । सतर्कतापूर्वक क्रोध को आने से रोको । क्रोध के आने पर इच्छापूर्वक मुस्करा जाओ और संयम करके शालीन और मधुर वचन बोलो; क्रोध भाग जाएगा । ऐसा करते करते क्रोध आना ही छोड़ देगा ।

(मा) मत (हृणीयथाः) क्रोध करो ।

करते नहीं क्रोध शालीन।
रहते शीतल, शान्त कुलीन।

७ भद्र-दर्शन

भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। सामवेद १८७४

प्यारे बच्चो !
इस सूक्ति का अर्थ है, (यजत्राः) हम यज्ञशील बनकर (अक्षभिः) आंखों से (भद्रम् पश्येम) भद्र देखें, भद्र का दर्शन करें, भद्रता के साथ देखें।

यह ठीक है कि आंखें देखने के लिए हैं, और प्रत्येक पदार्थ आंखों से ही देखा जाता है। पर यदि तुम यज्ञशील [सभ्य, धर्मात्मा, शाइस्ता] बनना चाहते हो तो भद्र-दर्शन करना और भद्रता के साथ देखना सीखो।

सदा भद्र पुरुषों, भद्र पदार्थों, भद्र दृश्यों और भद्र कृत्यों का ही अवलोकन करो। अश्लील स्त्री-पुरुषों, अपवित्र पदार्थों, कुदृश्यों और कुकृत्यों की ओर कभी भूलकर भी दृष्टिपात न करो। यथा दर्शन तथा मर्शन [विचार]। जैसे दर्शन वैसे विचार। यथा विचार तथा आचार। देखने के अनुसार विचार, और विचार के अनुसार आचार [चाल-चलन] होता है। अतः देखने में सदा सतर्क और सावधान रहो। सदा भद्र ही देखो, अभद्र कदापि नहीं।

साथ ही, सदा भद्रता के साथ, यथायोग्यतया देखो। माता, पिता, गुरु, ज्येष्ठ भ्राता, आदि गुरु जनों की ओर श्रद्धा और आदर के साथ देखो। देवियों की ओर अतिशालीनता के साथ देखो। छोटों की ओर प्रेमभाव से देखो। सखाओं की ओर सख्य भाव से देखो। दुःखी की ओर दया की दृष्टि से देखो। रोगी की ओर

सहानुभूति के साथ देखो। परिचितों की ओर आत्मीयता के सथा देखो। अपरिचितों की ओर परिचायक दृष्टि से देखो। सेवकों की ओर कृपादृष्टि से देखो। प्राकृत दृश्यों में प्रभु की महिमा का अवलोकन करो। सुदृश्यों में दर्शनीयता के दर्शन करो। सुकृत्यों को सहचारिता और प्रशस्ति की भावना से देखो।

हम जो देखें भद्र देखें, भद्र का दर्शन करें।
भद्रता के साथ देखें, भद्र ही नर्शन करें।

८ भद्र-श्रवण

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः। सामवेद १८७४

(देवाः) विजयशील हम (कर्णेभिः) कानों से (भद्रम् शृणुयाम) भद्र सुनें, भद्र का श्रवण करें, भद्रता के साथ सुनें।

मेरे वच्चो !

यह ठीक है कि कान सुनने के लिए ही हैं और प्रत्येक बात कानों से ही सुनी जाती है। फिर भी यदि तुम विजयशील बनना चाहते हो तो भद्र सुनना और भद्रता के साथ सुनना सीखो।

सदा भद्र ही सुनो। सिनेमाघरों में जो कुछ सुनाया जाता है वह सब अभद्र और अश्लील है। सिनेमाघरों में कभी मत जाओ, न सिनेमा की बातें सुनो। रेडियो पर केवल समाचार और भद्र पुरोगम ही सुनो। रेडियो के गाने, तराने तथा अभिनय कदापि न सुनो। सदा अच्छी वार्ता, अच्छे उपदेश, अच्छी कथा, अच्छी चर्चा, अच्छे गायन और अच्छी बातें ही सुनो। उपहास और बकवाद पर कभी कान न दो। यथा श्रवण [सुनना] तथा क्रमण [चलना]। भद्र [अच्छा] सुनने से भद्रता [आर्यता, सुसंस्कारिता] आती है। अभद्र सुनने से

अभद्रता [अनार्यता, कुसंस्कारिता] आती है। सदा भद्रों की ही संगति करो ताकि तुम्हें सदा भद्र ही सुनने को मिले।

साथ ही, सदा भद्रता के साथ यथायोग्यतया सुनो। माता, पिता, गुरु, साधु, संन्यासी, आदि गुरुजनों की बातें श्रद्धा के साथ सुनो। सत्पुरुषों के आदेश और उपदेश निष्ठा के साथ श्रवण करो। आत्मा, परमात्मा, धर्म, कर्म और कर्तव्य की बातें परम आस्था के साथ सुनो। देवियों की बातें नीची दृष्टि से शालीनता के साथ सुनो। छोटों की बातें प्रेम से सुनो। मित्रों की बात सौहार्द के साथ सुनो। दु:खी की चीत्कार वेदना के साथ श्रवण करो। रोगी की कराहट सहानुभूति के साथ सुनो। दीन-हीन की पुकार चिकित्साभाव से सुनो। परिचितों की बातें आत्मीयता के साथ सुनो। अपरिचितों की बातें परिचायक वृत्ति से सुनो। सेवकों की बातें कृपाभाव से सुनो। बड़ों की बड़ाई, धीरों की धीरता, वीरों की गाथा, ज्ञानियों की ज्ञानचर्चा मनोयोग के साथ सुनो, और महान्, धीर, वीर और ज्ञानी बनो।

विजयशील बनना चाहते हो तो सदा भद्र ही सुनो और भद्रता के साथ सुनो।

विजयशील हम सुनें भद्र ही।
और भद्रता के ही साथ।

९ पास बैठना

नमसेदुप सीदत। ऋग्वेद ९.११.६

आर्य बच्चो!
इस सूक्ति का अर्थ है, (नमसा) नमस्कारपूर्वक, सादर [अदब के

साथ] (इत्) ही (उप) समीप (सीदत) बैठो। बताओ, तुम क्या समझे ? नहीं समझे ? तो, लो, हम बताएं।

जब तुम किसी के पास बैठो, और विशेषतः बड़ों के पास बैठो तो तुमको आदर [अदब] के साथ बैठना चाहिए, निरादर [बेअदबी] के साथ नहीं। जब तुम बड़ों के पास जाओ तो प्रथम उनको नमस्कार करके उनके अभिमुख [सामने] खड़े हो जाओ और जब वे तुमसे बैठने को कहें तब बैठो। जब तुम उनके अभिमुख बैठने लगो तब यह ध्यान रक्खो कि तुम बड़ों की अपेक्षा ऊंचे [उच्चतर] अथ वा अच्छे [श्रेष्ठतर] स्थान और आसन पर न बैठो।

बड़ों के पास पहुंचने पर यदि तुम उनके बिना कहे स्वतः [अपने आप] बैठना चाहो तो बैठने से पूर्व उनसे आदरपूर्वक पूछो, 'क्या मैं बैठ सकता हूं ?' वा 'आज्ञा हो तो मैं बैठ जाऊं ?' वे अवश्य यही कहेंगे, 'हां, अवश्य बैठिए।' तब नमस्कार करके यथायोग्य स्थान वा आसन पर शान्ति और व्यवस्था के साथ बैठ जाओ।

बड़ों के अभिमुख यदि तुम भूमि [फ़र्श] पर बैठे हुए हो तो पैर फैलाकर वा इधर उधर झुककर कदापि न बैठो। दोनों पैरों को व्यवस्था के साथ सिकोड़कर और कमर को सीधी रखकर बैठो और दृष्टि नीची रक्खो। बातचीत करते हुए यदि दृष्टि ऊपर करनी पड़े तो आदर और शालीनता के साथ उनकी ओर देखो।

यदि तुम चारपाई, चौकी अथ वा कुर्सी पर बैठो तो बड़ों के सामने न तो अपने पैरों को इधर उधर घुमाओ, न बैठे बैठे पैरों को हिलाओ।

जब तुम बड़ों से विदा होओ तो खड़े होकर प्रथम उनको नमस्कार करो और उनके पास से आदर और व्यवस्था के साथ जाओ।

बैठो नमस्कार के साथ।
अपनी स्थिति के अनुसार।

१० बुद्धि

अयाम धीवतो धियः । ऋग्वेद ८.९२.११

राष्ट्र के भावी नागरिको !

कहावत है, **बुद्धिर् यस्य बलं तस्य,** जिसकी बुद्धि उसका बल । शरीर-बल के साथ बुद्धिबल होना परम आवश्यक है। एक दुर्बलकाय बुद्धिमान् करोड़ों, बुद्धिहीन बलवान् मनुष्यों पर शासन कर सकता है। इतिहास में तुम्हें ऐसी अनेक घटनाएं पढ़ने को मिलेंगी जहाँ मुट्ठी-भर बुद्धिमानों ने करोड़ों, भीमकाय, निर्बुद्धि मनुष्यों पर सैकड़ों वर्ष राज्य किया । बुद्धिमान् व्यापारी विपुल धन कमाता है, और मूर्ख व्यापारी अपनी पूंजी भी खो बैठता है । बुद्धिमान् सेनापति विजय प्राप्त करता है, और मूर्ख सेनापति पराजय । बुद्धि द्वारा तो राज्य, साम्राज्य, धन, ऐश्वर्य, मान, महिमा, यश, गौरव, विभूति, मोक्ष, सब कुछ प्राप्त होता है ।

बुद्धिमान् बनने का व्यावहारिक, रोचक और सरल उपाय यह है कि तुम बुद्धिमानों के जीवनचरितों का अनुशीलन किया करो । रामचरित पढ़ने से तुम्हें ज्ञात होगा कि राम ने बुद्धि के प्रताप से वनवास की अवस्था में भी किस प्रकार लंका के शक्तिशाली साम्राज्य को परास्त किया। कृष्णचरित पढ़ने से तुम्हें पता चलेगा कि बुद्धिबल से कृष्ण ने कैसी कैसी विकट समस्याओं को सहजतया सुलझाया । वीरों, ऋषियों, धर्मात्माओं, महात्माओं, धीरों, सन्तों, यात्रियों, राजनीतिज्ञों, व्यापारियों, प्रचारकों तथा महापुरुषों के जीवनवृत्तों को पढ़ने से जितना बुद्धिविकास तथा अनुभवोपेत बोध होता है उतना अन्य किसी प्रकार से नहीं ।

हम (धीवतः) बुद्धिमानों की (धियः) बुद्धियों को (अयाम) प्राप्त रहें ।

पाएं धीमानों की बुद्धि ।
त्यागें मूढ़ों की दुर्बुद्धि ।

११ विशाल क्षेत्र

उर्वी काष्ठा, हितं धनम् । ऋग्वेद ८.८०.८

प्रिय बालको !

(काष्ठाः उर्वी) दिशाएं विशाल [हैं]। [सब दिशाओं में] (धनम् हितम्) धन निहित [है], ऐश्वर्य भरा पड़ा है। धन चाहनेवालों के के लिए चारों दिशाओं में धन ही धन भरा पड़ा है। ऐश्वर्य सम्पादन करनेवालों के लिए पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ऊपर, नीचे, छहों दिशाएं ऐश्वर्य सजाए खड़ी हैं।

धन अनेक हैं। विद्या धन है। ज्ञान धन है। विज्ञान धन है। द्रव्य धन है। प्रत्येक दिशा में असीम धन निहित है। विद्या-धन असीम है। ज्ञान-धन अथाह है। विज्ञान-धन अपार है। द्रव्य-धन [सोना, चाँदी, हीरा, पन्ना, मोती, जवाहरात] अपरिमित है।

सीमित प्रदेशों का मोह त्यागकर विशाल दिशाओं में विचरण करनेवाले व्यक्ति तथा राष्ट्र ही विशाल धनैश्वर्यों का सम्पादन करते हैं। प्राचीन काल में हमारे आर्यावर्त का सब प्रकार का धनैश्वर्य इसी लिए सबसे अधिक था कि आर्य लोग सम्पूर्ण भूमण्डल पर सर्वत्र आदान-प्रदान और वाणिज्य-व्यापार किया करते थे।

तुम भूगोल का विशेष अध्ययन करो और अभी से अपनी ऐसी तैयारी करो कि बड़े होकर तुम दिशा-विदिशाओं में विचरकर देश देश से विविध कला-कौशल और ज्ञान-विज्ञान को सीखो और उनको आर्यावर्त में प्रचलित करो। साथ ही देश-देशान्तरों में विचरण करते हुए तुम विदेशों में अपने धर्म, सभ्यता और संस्कृति का प्रचार और

प्रसार भी कर सकोगे ।

विश्वभ्रमण करो और विश्वशिरोमणि बनो ।

सभी दिशाएं हैं विशाल ।
और सबमें भरा अमित ऐश्वर्य ।

१२ सुवक्ता

यशस्व्यस्याः संसदोहं प्रवदिता स्याम् । (जैमिनीय) सामवेद ६११

राष्ट्र-विभूतियो !

आज की शिक्षा वक्तृत्व[भाषण]-कला के विषय में है । वक्तृत्व सर्वश्रेष्ठ कला है । एक सुवक्ता संसार का जितना कल्याण कर सकता है उतना अन्य कोई नहीं कर सकता । सुभाषण द्वारा मानव-जाति का जितना हित, सुधार, शिक्षण, पथप्रदर्शन और जीवननिर्माण किया जा सकता है उतना अन्य किसी उपाय से सम्भव नहीं । जितनी सफलता वा विजय सुवक्तृत्व [सुभाषण] से प्राप्त होती है उतनी तो लेखनी और तलवार से भी नहीं हो सकती । एक सुवक्ता असंख्य लेखकों, धनवानों और वीरों को अपना अनुयायी बना लेता है । सुवक्ता नगर, जनपद, राष्ट्र और संसार का नेता बन सकता है ।

सुवक्ता के लिए यह परम आवश्यक है कि वह यशस्वी भी हो । वक्तृत्व और यश साथ साथ चलने चाहिएं । अन्यथा परिणाम प्रतिकूल और अवाञ्छनीय होता है । यश उन ही व्यक्तियों को प्राप्त होता है जो कर्मवान्, सच्चरित्र और सदाचारी होते हैं । अतः सुवक्तृत्व और यश का सहसम्पादन करो ।

सुवक्ता बनने के लिए तुम निम्न बातों का अभ्यास करो :

१ जिस विषय पर बोलना हो उसकी यथासम्भव पूरी जानकारी निष्पादन करो ।

२ जब श्रोताओं के अभिमुख बोलने जाओ तो प्रसन्नवदन तथा शोभन मुद्रा में खड़े होओ वा बैठो।

३ श्रोताओं को समुचित और शिष्ट शब्दों से सम्बोधन करो।

४ निर्धारित विषय के विभिन्न अंगों पर यथाक्रम और यथासंगति प्रकाश डालो।

५ अपने विषय को सर्वंगम, रोचक, प्रिय, शालीन और मधुर शब्दों में सरल, स्पष्ट रीति से उपस्थित करो।

६ विषयान्तर, असंगत और आवश्यकता से अधिक कदापि न बोलो।

७ अपने भाषण को सदा निश्चित समय के अन्दर समाप्त करो।

(अहम्) मैं (अस्याः सम्-सदः) इस सभा का (यशस्वी) यशस्वी (प्र-वदिता) सुवक्ता, सुभाषणकर्ता (स्याम्) होऊं।

मैं यशस्वी वक्ता बन जाऊं।
जग को शुभ सन्देश सुनाऊं।

१३ उन्नति

सुपर्णो धावते दिवि। यजुर्वेद ३३.९०

प्यारे बच्चो!

सुपर्ण एक पक्षी होता है, जिसे तुमने अवश्य देखा होगा। उसे श्येन वा बाज़ भी कहते हैं। इसके पंख बड़े स्वस्थ और सुदृढ़ होते हैं। यह पक्षी आकाश में बड़ी तीव्रता के साथ उड़ता है। यह ऊँची और तीव्र उड़ान के लिए बड़ा प्रसिद्ध है!

सुपर्ण = सु + पर्ण = उत्तम + पंख। जिसके पर्ण [पंख] सु [उत्तम] हों उसे **सुपर्ण** कहते हैं। इस प्रकार, इस सूक्ति का शब्दार्थ है,

(सु-पर्णः) उत्तम पंखों वाला (दिवि) आकाश में (धावते) दौड़ता, उड़ता है। 'आकाश में उड़ने' से तात्पर्य है ऊंचा चढ़ना, उन्नति करना, प्रगति करना।

यदि तुम भी अपने को सुपर्ण [सुपंखवाला] बना लो तो तुम भी यथेच्छ उन्नति कर सकते हो, बड़ी प्रगति कर सकते हो। तुम्हारे पास भी एक सुपर्ण [उत्तम पंख] है। यदि तुम उसको स्वस्थ और सुदृढ़ बना लो तो तुम भी विश्व-आकाश में बहुत ऊँचे चढ़ सकते हो। बताओ, तुम्हारे पास वह पंख कौन सा है ? नहीं समझे ? तो, लो, हम बताएं।

वह पंख है बुद्धि, सुबुद्धि। बुद्धि से बढ़कर उड़नेवाला, ऊंचा ले जानेवाला अन्य कोई पंख है ही नहीं। देखो, बुद्धिमानों ने बुद्धि से ऐसा तीव्र वायुयान बना लिया कि मनुष्य उसमें बैठकर श्येन से भी अधिक ऊँचाई पर उड़ते हैं और श्येन से भी अधिक तीव्र गति करते हैं।

बुद्धि परम बल है। बुद्धि परम साधन है। बुद्धि परम प्रकाश है। बुद्धि परम ज्योति है। बुद्धि ही परम ऐश्वर्य है। बुद्धि से ज्ञान, विज्ञान, विद्या, राज्य, साम्राज्य, ऐश्वर्य, परमैश्वर्य, परमात्मा, सब कुछ प्राप्त हो सकता है। अतः अपनी बुद्धि को स्वस्थ, सुदृढ़, परिमार्जित, परिष्कृत, तीव्र, तीक्ष्ण और सूक्ष्म बनाओ, और यथेच्छ ऊँचे चढ़ जाओ।

एक वृद्ध राजा जब योगसाधना के लिए वन जाने लगा तो उसने अपने तीनों पुत्रों को बुलाया और कहा, 'जो चाहो सो मांगो।' ज्येष्ठ पुत्र ने राज्य मांगा; उसे राज्य मिला। मध्यम पुत्र ने धन मांगा; उसे धन मिला। कनिष्ठ पुत्र ने एकान्त में अपने पिता से अपने पिता की अनुभवसिद्ध बुद्धि माँगी, उसे बुद्धि मिल गई। कनिष्ठ पुत्र दूर देश में किसी एक राजा का मन्त्री बना, और कालान्तर में अपनी बुद्धि के प्रताप से चक्रवर्ती सम्राट् बन गया।

(सु-पर्णः) बुद्धिमान् (दिवि धावते) आकाश में उड़ता है, बहुत उन्नति करता है।

बुद्धि-पंख से उड़ना सीखो।
उच्च शिखर पर चढ़ना सीखो।

१४ त्रिधातु मधु

त्रिधातु मधु क्रियते सुकर्मभिः। ऋग्वेद ६.७०.८

बालपुष्पो!

मधुमक्षिकाएं सुगन्धित, मीठे, सरस पुष्पों से मधु [शहद] प्राप्त करती हैं। जो गुण पुष्पों में होते हैं वे ही गुण मधु में होते हैं। पुष्पों में तीन गुण होते हैं—सुगन्धि, मिठास और सरसता। अतः मधु में भी ये तीन गुण होते हैं। मधु में सुगन्धि होती है, माधुर्य [मिठास] होता है और सरसता होती है।

मधुमक्षिकाएं पुष्पित [खिले हुए] पुष्पों में से ही मधु प्राप्त कर सकती हैं, बन्द, मुरझाई, कुम्हलाई, वा उदास कलियों में से नहीं। पुष्पित, हंसते हुए पुष्प ही त्रिधातु [सुगन्धि, माधुर्य और सरसता से युक्त] मधु प्रदान करते हैं।

तुम भी अपने जीवन में त्रिधातु मधु सम्पादन करो। त्रिधातु मधु किस प्रकार सम्पादन किया जाता है, यह उपर्युक्त सूक्ति में बताया गया है। (त्रि-धातु) त्रि-धातु (मधु) शहद (सु-कर्मभिः) सुकर्मों से, शोभन कर्मों द्वारा (क्रियते) सम्पादन किया जाता है।

सर्वप्रथम, तुम अपने-आपको पुष्पित, खिला हुआ, हँसता हुआ पुष्प बनाओ। जो बालक सदा प्रसन्न और हँसते-मुस्कराते रहते हैं वे खिले पुष्पों के समान हैं।

अपने शील, स्वभाव, दृष्टि तथा वाणी को अतिशय मधुर बनाओ। छोटे, बड़े, सबके प्रति मधुर दृष्टि से देखो, मीठे वचन

बोलो और मधुरता के साथ व्यवहार करो। प्रसन्नवदन रहते हुए सदा सुकर्म, शोभनीय कार्य करो और सबकी सुसेवा करो। माधुर्य तथा सुसेवा से तुम्हारा यश होगा। और यश ही मानवपुष्प की सुगन्धि है। अपने हृदय में सबके प्रति प्रेमभाव रखो। प्रेमभाव ही सहृदयता वा सरसता है।

प्रसन्नवदन पुष्पित पुष्प है। यश, माधुर्य, सरसता से उपेत जीवन ही त्रिधातु मधु है।

खिले पुष्प स.म कीजिए सदा हास-परिहास।
यश-सुगन्धि फैलाइए धार सुरस सुमिठास।

१५ छिद्रपूर्ति

लोकं पृण, छिद्रं पृण। यजुर्वेद १२.५४

प्यारे बच्चो!

किसी भी वस्तु में छिद्रों का होना बहुत भयावह तथा भयंकर होता है। नौका में छिद्र हो जाएं तो यात्रियों सहित वह डूब जाती है। बुद्धिमान् नाविक नौका के छिद्रों को सद्यः बन्द करा देता है तो नौका तथा यात्रियों के डूबने का भय नहीं रहता। जल, घृत वा दुग्ध के पात्र में छिद्र हो जाते हैं तो अन्तर्निहित वस्तु सर्वथा विनष्ट हो जाती है। गृह की छत में छिद्र होते हैं तो वर्षा ऋतु में बड़ा कष्ट होता है।

इस प्रकार, लोक [संसार] में जहां भी छिद्र होता है वहीं कष्ट होता है और हानि होती है। तुम्हारा जीवन भी तो एक मानवलोक है। तुम्हारे जीवनलोक में यदि कहीं, कोई छिद्र होगा तो तुम्हारी जीवननौका डूब जाएगी। यदि उसमें कहीं कोई छिद्र न होगा तो

तुम्हारी जीवननौका तरती चली जाएगी और पार उतर जाएगी।

तुम्हारे शरीर में जो आंख, नाक, कान, मुख, आदि इन्द्रियां हैं उनका नाम छिद्र नहीं है। शरीर में छिद्र नाम दोष का है। तुम सावधानी के साथ सदा यह निरीक्षण करते रहो कि तुम्हारे जीवन में किसी इन्द्रिय में दोष तो नहीं है। तुम्हारे विचार निर्दोष हों, तुम्हारी दृष्टि निर्दोष हो, तुम्हारा श्रवण निर्दोष हो, तुम्हारा भक्षण और भाषण निर्दोष हों, तुम्हारे करों के कर्म निर्दोष हों, तुम्हारे हृदय की भावनाएं निर्दोष हों, तुम्हारी चाल निर्दोष हो। तुम्हारी प्रत्येक इन्द्रिय का व्यवहार निर्दोष हो।

याद रक्खो, एक भी छिद्र नौका को डुबा देता है। जिसकी जीवननौका में अनेक छिद्र होंगे उसके डूबने में तो सन्देह ही नहीं। अपने जीवन को सर्वथा अछिद्र [निर्दोष] बनाओ और पार हो जाओ।

(लोकम्) लोक, जीवन को (पृण) पूर। (छिद्रम्) छिद्र को (पृण) पूर।

पहले अपने छिद्र पूर ले।
पीछे छिद्र जगत् के पूर।

१६ पराक्रमशीलता

सुवीर्यस्य पतयः स्याम। ऋग्वेद ६.८६.७

बालवीरो !

प्रथम इस सूक्ति का अर्थ जान लो। हम (सु-वीर्यस्य) सु-पराक्रम के (पतयः) स्वामी (स्याम) हों। इस सूक्ति की व्याख्या पढ़ने से पूर्व तुम इसे शब्दार्थ सहित कंठस्थ कर लो।

हम धनों के स्वामी हों, हम सम्पत्तियों के स्वामी हों, हम राज्यों,

साम्राज्यों के स्वामी हों, ऐसा तो तुमने पहले अनेक बार सुना, पढ़ा होगा। 'हम सु-पराक्रम के स्वामी हों,' सम्भवतः ऐसा तुमने आज ही पढ़ा है।

अच्छा, बताओ, धन, सम्पत्ति, राज्य, साम्राज्य और पराक्रम में ज्येष्ठ और श्रेष्ठ क्या है ? निस्सन्देह, पराक्रम ही सबसे ज्येष्ठ और और श्रेष्ठ है। पराक्रम से ही धन, सम्पत्ति, राज्य और साम्राज्य की प्राप्ति तथा स्थापना होती है, अपि च पराक्रम से ही उनका स्थायित्व तथा रक्षण होता है। पराक्रमशून्य व्यक्तियों तथा जातियों के प्राप्त ऐश्वर्य भी विनष्ट हो जाते हैं और पराक्रमशील व्यक्ति तथा जाति अपने विनष्ट ऐश्वर्यों की पुनः प्राप्ति कर लेते हैं।

तुम उग्र पराक्रमी बनो। पराक्रमी बनकर आर्यावर्त के अतीत गौरव तथा वर्चस्व का वर्तमान में पुनरावर्तन करो।

तुम्हारा यह आर्यावर्त कभी महतो महान् था। धर्म, संस्कृति, आचार, विचार और सभ्यता में विश्वगुरु होने के अतिरिक्त शूरता, वीरता और धीरता के लिए भी कभी वह विश्वविख्यात था। यहां के विप्र, ऋषि और सम्राट् कभी सार्वभौम आर्य साम्राज्यों के प्रवर्तक तथा सूत्रसञ्चालक थे।

हम पराक्रमों के हों स्वामी।
हों सुधन्य, सुधर्मी, शुभधामी।

१७ इन्द्र-वर्धन

इन्द्रं वर्धन्ति कर्मभिः। ऋग्वेद ६.४६.३

बालवीरो !

इन्द्रशक्ति, आत्मबल, आत्मसंबल परमबल है, बलों का बल है,

वास्तविक बल है। इन्द्रियों में जो शक्ति है वह इन्द्र [आत्मा] की ही है. इन्द्रियों में जो बल—संबल है वह इन्द्र [आत्मा] का ही है।

पुष्ट और सशक्त शरीरवाले भी कायर होते हैं, यदि उनमें इन्द्र-शक्ति वा आत्मिक बल न हो। कृशकाय और दुर्बलशरीर भी वीर और पराक्रमी होते हैं, यदि वे इन्द्रशक्ति वा आत्मिक बल से युक्त हों।

इन्द्रशक्ति वा आत्मसंबल के बिना अन्य सब बल निरर्थक और निस्सार सिद्ध होते हैं। अतः तुम इन्द्रशक्ति का अवश्य सम्पादन करो।

(इन्द्रम्) इन्द्रशक्ति, आत्मबल को (कर्मभिः) कर्मों से (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं। इन्द्रशक्ति, काम करने से बढ़ती है, बातें बनाने से नहीं। प्रायः बातून और दार्शनिक व्यक्ति भीरु और अकर्मण्य होते हैं, तथा मितभाषी व्यक्ति साहसी और पराक्रमी होते हैं।

यदि तुम आत्मिक बल से युक्त होना चाहते हो तो मितभाषी और अमितकर्मा बनो; बातें बनानेवाले नहीं, करके दिखानेवाले बनो। कर्मों में, सुकर्मों में, कर्तव्यों के सम्पादन में सदा निष्ठा रक्खो, और श्रम और तप के द्वारा कर्तव्य कर्मों का सुनिष्पादन करो। दक्षता के साथ कर्मों के सम्पादन से अतुल आत्मप्रस्फुरण और आत्म-संबल का अभिवर्धन होता है।

कर्म से होता आत्मविकास।
अकर्म से होता आत्महास।

१८ धन-यश

शिरो मे श्रीर् यशो मुखम्। यजुर्वेद २०.५

मेरे बच्चो!

इस सूक्ति में बड़ी सुन्दर और अमूल्य शिक्षा है। (मे) मेरा (शिरः)

शिर (श्रीः) धन [है]। [और] (मुखम्) मुख (यशः) यश [है]।

मे शिरः श्रीः, मेरा शिर धन है। शिर विचारों का अधिष्ठान है। विचारों का संसार पर शासन है। किसी भी कार्य को करने के पूर्व उसके विषय में विचारा जाता है। क्रिया से पूर्व विचार होते हैं। विचार ही कर्म की प्रेरणा करते हैं और विचार ही कर्म की विधि दर्शाते हैं। विचारपूर्वक व्यापार-व्यवसाय करने से द्रव्य-धन की प्राप्ति होती है। विचारपूर्वक अध्ययन करने से विद्या-धन का लाभ होता है। विचारपूर्वक उपाय करने से राज्य-साम्राज्य की स्थापना होती है। तुम विचारशील और विचारवान् बनकर सब प्रकार की श्रियों, धनैश्वर्यों, राज्य-साम्राज्यों का सम्पादन करो। विचारपूर्वक साधना करने से कठिन से कठिन साध्य की निश्चय सिद्धि सम्भव है। **मे शिरः श्रीः**, मेरा शिर श्री का साधन है।

मे मुखं यशः, मेरा मुख यश है। मुख से बोला जाता है। मुख विचारों को व्यक्त करने का साधन है। यदि हम अपने परिष्कृत, पवित्र, समुज्ज्वल और हितकारी विचारों को अपने मुख से सुस्पष्ट, शालीन और समाधानकारक वाणी में जनता के सम्मुख उपस्थित करें तो जनता का हित और हमारा यश होता है। सुभाषण से जितनी शीघ्र और जितनी अधिक ख्याति प्राप्त होती है उतनी अन्य किसी प्रकार से नहीं होती। तुम विचारशील वक्ता और सुभाषी बनो; तुम्हारा बड़ा यश होगा। **मे मुखं यशः**, मेरा मुख यश का साधन है।

मेरा शिर है श्री।
मेरा मुख यश है।

१९ उग्र बाहु

उग्रा वः सन्तु बाहवः । यजुर्वेद १७.४६

बालनागरिको !

(वः) तुम्हारी (बाहवः) बाहुएं (उग्राः) उग्र (सन्तु) हों ।

बालिकाओं और बालकों को अपनी भुजाएं उग्र, बलिष्ठ तथा प्रहार और पराक्रम करनेवाली बनानी चाहिएं । कोमल और दुर्बल भुजाएं किसी काम की नहीं होतीं ।

कठिन और कठोर कार्य करने से भुजाएं सुदृढ़ और सुडौल बन जाती हैं । जो बच्चे पैरों से प्रभूत चलते-फिरते तथा उछलते-कूदते हैं और भुजाओं से भरपूर श्रम करते हैं उनके न केवल पग और भुजाएं, अपि तु सम्पूर्ण शरीर स्वस्थ, नीरोग और बलिष्ठ रहते हैं ।

भुजाओं को उग्र बनाने के लिए श्रम के कार्य किया करो । कुदाल से भूमि खोदो, कुल्हाड़ी से लकड़ियां फाड़ो, भार उठाओ, झाड़ू लगाओ, कपड़े धोओ, खुरपे से घास खोदो, दरांती से खेत काटो, घन पटकाओ, हल जोतो, चक्की पीसो, दूध बिलोओ, सूत कातो, वस्त्र बुनो, पानी खींचो, ओखली में मूसल से धान और चावल कूटो, सड़क कटो, रस्सी बटो ।

भुजाओं को उग्र बनाने के लिए अनेक व्यायाम करो । मुग्दर [डम्बल] फिराओ, तलवार घुमाओ, रस्सा खींचो, लाठी चलाओ, शस्त्रों का संचालन करो, कुश्ती लड़ो, दण्ड लगाओ, अखाड़ा खोदो, मालिश करो ।

बाहुओं की शोभा बाहुघटिका [रिस्टवाच] वा हस्ताभूषणों में नहीं है, उन्हें सुगठित, सुडौल और गोल-मटोल बनाने में है । उग्र भुजाओं वाले संसार के प्रत्येक क्षेत्र में और जीवन के प्रत्येक पार्श्व में सम्पन्न, सफल, विजयी, सुखी, स्वाधीन और सुधन्य होते हैं । दुर्बल भुजाओं वाले सदा दीन, हीन, दरिद्र, दुःखी, पराधीन,

पराजित, विफल, और जघन्य होते हैं।

उग्र तुम्हारी बाहुएं हों।
उग्र हो प्रहार-विक्रम।

२० देव का काव्य

देवस्य पश्य काव्यं, न ममार, न जीर्यति। अथर्ववेद १०.८.३२

धर्मनिधियो !

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब बालिकाओं तथा बालकों का परम धर्म है।

वेद सब सत्य विद्याओं का मूल है। वेद में सम्प्रदायवाद नहीं है। वेद में मानवधर्म है। वेद पन्थग्रन्थ नहीं है। वेद मानवधर्म-शास्त्र है।

वेद दैवी ज्ञान है और सृष्टि के आदि में दैवी भाषा में ही वेद-ज्ञान का आविर्भाव हुआ करता है। वेद अपौरुषेय है। वेद की भाषा भी अपौरुषेय है। वेदज्ञान जिस भाषा में है वह भाषा मानवनिर्मित नहीं है। वह तो प्रकृति के समान नैसर्गिक है।

वेद देव का, प्रभु का अमर काव्य है। वह न मरता है, न जीर्ण होता है। वह न विनष्ट होता है, न कभी पुराना होता है। वह तो अमर और सदा नवीन है। वेद अमर देव की कृति है। अतः वेद अमर काव्य है। वेद सुन्दर देव की कृति है। अतः वेद सदा सुन्दर और नवीन है।

संसार कर्तव्यमय है। वैदिक परिभाषा में कर्तव्य को धर्म कहते हैं। वेद में व्यक्तिधर्म, परिवारधर्म, राष्ट्रधर्म, अन्तरराष्ट्रधर्म, विश्व-धर्म की शिक्षाएं हैं। वेद सर्वधर्म है।

आत्मानन्द के लिए ज्ञान की, शरीरसुख के लिए विज्ञान की आवश्यकता है। ज्ञान और विज्ञान, दोनों कर्मसाध्य हैं। ज्ञान, विज्ञान और कर्म द्वारा ही आनन्द, सुख और मोक्ष की सिद्धि होती है। वेद में ज्ञान, विज्ञान और कर्म का विशद विवरण है। वेद में ये तीनों विद्याएं हैं। इसलिए वेदविद्या को **त्रयी** कहते हैं।

तुम वेद का स्वाध्याय किया करो। श्रद्धापूर्वक वेदोपदेश सुना करो। तुम वेद के विद्वान् बनकर वेदोपदेश देने की योग्यता सम्पादन करो और ऋषि-पद प्राप्त करो।

(देवस्य) देव के (काव्यम्) काव्य को (पश्य) देख, जो (न ममार) न मरा करता है, (न जीर्यति) न जीर्ण होता है।

देव के वेदकाव्य को देख।
न मरता और न होता जीर्ण।

२१ आत्म–स्वरूप

कोसि, कतमोसि, कस्यासि, को नामासि। यजुर्वेद ७.२९

प्रिय बालको !

यहां चार प्रश्न हैं, १) तू (कः असि) कौन है? २) तू (कतमः असि) कौन-सा है? ३) तू (कस्य असि) किसका है? ४) तू (कः-नाम असि) किस-नामवाला है?

सृष्टि के आदि से एक सहस्र वर्ष पूर्व तक हमारे पावन देश का नाम आर्यावर्त रहा और उसके निवासी आर्य तथा आर्या कहाते थे। **आर्य** का अर्थ है श्रेष्ठ, सभ्य, सदाचारी तथा सुकर्मशील पुरुष, और **आर्या** का अर्थ है श्रेष्ठा, सभ्या, सदाचारिणी तथा सुकर्मशीला नारी।

तुम आर्य राष्ट्र के नागरिक हो। तुम इन प्रश्नों के उत्तर इस

प्रकार दिया करो '१) मैं आर्य हूं, २) मैं आर्यों में से हूं, मैं आर्यों का वंशज हूं, ३) मैं आर्यजाति का हूं, मैं आर्यावर्त का हूं, ४) मैं आर्यनामा हूं ।'

हम वे आर्य हैं जिन्होंने संसार को सदा धर्म, संस्कृति और सभ्यता का पाठ पढ़ाया। हम वे विश्ववन्द्य आर्य हैं जिन्होंने विश्व को सदा ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा दी। हम उन आर्यों के वंशज हैं जिन्होंने युग युग इस भूमण्डल पर न्यायपूर्वक सुशासन किया। हम उस पुरातन विराट् आर्यावर्त के नागरिक हैं जो सदा विश्वगुरु रहा। हम उस आर्य-नामवाले हैं जिसमें सर्वोत्कृष्टता की भावना है। हम आर्य हैं, हम विश्वविजयी आर्यों के वंशज हैं, हम पुरातन, सर्वशक्तिमान् आर्यावर्त के नागरिक हैं, हमारा नाम आर्य है।

गत एक हजार वर्षों से हमारी इस पावन मातृभूमि का सुधन्य नाम हिन्दुस्थान चला आरहा है। यह नाम भी सर्वमान्य और अतिशय गौरवपूर्ण है। विदेशी आक्रान्ताओं ने जब हमारी इस पवित्र भूमि पर दर्रा खैबर के मार्ग से आक्रमण पर आक्रमण किए तो हमारे वीर क्षत्रियों ने अपने को हिन्दु उपाधि से गौरवान्वित करके उनके साथ सैकड़ों वर्षों तक निरन्तर स्वातन्त्र्य युद्ध किए और अन्त में विदेशियों की शासन-सत्ता को इस सुदेश से निर्मूल करके ही उन वीर क्षत्रियों ने दम लिया। हिन्दु उपाधि से इस देश का नाम हिन्दुस्थान पड़ा।

हिनस्ति दुष्टान् दुरितानि च यः स हिन्दुः। जो दुष्टों और दुरितों का, आततायियों और बुराइयों का हनन करता है उसे हिन्दु कहते हैं। हिन्दुओं का देश होने से हमारी मातृभूमि हिन्दुस्थान कहलाई और हमारा राष्ट्र हिन्दु राष्ट्र कहलाया। उपर्युक्त चार प्रश्नों के उत्तर तुम सीना तानकर इस प्रकार दे सकते हो, १) मैं हिन्दु हूं, २) मैं हिन्दुओं में से हूं, मैं हिन्दुओं का वंशज हूं, ३) मैं हिन्दु जाति का हूं, मैं हिन्दुस्थान का हूं, ४) मैं हिन्दु-नामा हूं।

वेद हमारा धर्म है, आर्य हमारा नाम ।
देश आर्यावर्त है, पुण्यभूमि शुभधाम ।१
देश हमारा धन्य है, हिन्दुस्थान सुखधाम ।
हिन्दु राष्ट्र के नागरिक, हिन्दु हमारा नाम ।२

२२ वज्रांग

अश्मानं तन्वं कृधि । अथर्ववेद १.२.२

(तन्वम्) शरीर को (अश्मानम्) पत्थर (कृधि) बना ।

मेरे बच्चो !

शरीर समस्त साधनाओं का साधन है । समस्त धर्मानुष्ठान, सम्पूर्ण साधनाएं, सब पराक्रम तथा आमोद-प्रमोद शरीर के द्वारा ही सम्पादन किए जाते हैं । जय, विजय और साफल्य का आधार देह ही है । लोक और पर लोक की सिद्धि इस देह से ही होती है । शरीर आत्मा का पुर है, दुर्ग है । इसी में ब्रह्मासाक्षात्कार होता है । इसी से परिवार, परिजन, समाज, राष्ट्र और संसार की सेवा होती है ।

बलवान् शरीर में आत्मा बलवान् होकर निवास करता है । स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ विचार स्थिरता के साथ स्थित रहते हैं । सुदृढ़ शरीर में ही धीरता, वीरता, तेजस्विता, सुन्दरता और अदम्यता का निवास होता है । सशक्त देह ही अतुल साहस का अधिष्ठान होता है ।

अतः तुम अपने शरीर को अतिशय स्वस्थ, सुदृढ़, सर्वांगपूर्ण, तेजस्वी और सुन्दर बनाओ । अपने शरीर को वज्र के समान कठोर और अक्षीण बनाओ । अपने शरीर को ऐसा अभेद्य दुर्ग बनाओ कि उसे न शर छेद सके, न रोग भेद सके, न आलस्य गिरा सके, न पाप

हिला सके, न शत्रु नमा सके। देह का दुर्बल और रोगी होना महापाप है, बड़ा भारी अपराध है।

शरीर को दृढ़ दुर्ग बनाओ। देह को वज्रांग बनाओ। काया को लौहतनू बनाओ। और फिर देखो कि तुम किस प्रकार द्रुत गति से सर्वतोमुखी उन्नति करते हो। निरुत्साह, उदासीनता, रोग, भोग, विफलता, पराजय, भय, शोक, त्रास और पाप बलवान् शरीर का स्पर्श नहीं करते।

प्रत्येक कार्य का उपाय है। उपाय करो, यत्न करो, तुम वज्रांग बन जाओगे। ख़ूब खेलो, व्यायाम करो, दौड़ो, पौष्टिक पदार्थों का सेवन करो, हंसो, सदा प्रसन्न रहो, कभी चिन्ता और क्रोध न करो, अच्छी संगति में रहो, समय का पालन करो, तुम सदा सुदृढ़ और सशक्त रहोगे।

वज्रतुल्य हो देह तुम्हारी।
फ़ौलादी नस-नाड़ी।

२३ हठीले

अप्रतीतो जयति सं धनानि। ऋग्वेद ४.५०.९

राष्ट्र की आशाओ!

पग पीछे न हटानेवाले सब क्षेत्रों में विजयी होते हैं और सर्वैश्वर्य सम्पादन करते हैं। हठीले खोई सम्पदा को पुनः प्राप्त कर लेते हैं, पराजय के कलंक को धोकर पुनः पुनः विजयश्री का आलिंगन करते हैं, उजड़ी वसुन्धरा को फिर हरा-भरा करते हैं, विगत साम्राज्यों की पुनः स्थापना करते हैं, विनष्ट कीर्ति को पुनः हस्तगत करते हैं, गिर-गिरकर उठते हैं और पुनः विश्व-शिरोमणि बन जाते हैं।

हठीले जान पर खेलते हैं, आन पर मरते हैं, स्वाभिमान से जीते हैं। हठीले वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, सार्वजनीन, राष्ट्रीय; विश्वीय, आत्मिक, भौतिक, सब धन-सम्पदाओं का सम्पादन करते हैं। हठीले मां का दूध हलाल करते हैं, मातृभूमि का मुख उज्ज्वल करते हैं, कुल का नाम करते हैं, राष्ट्र का उत्थान करते हैं, मानवता का मान करते हैं!

हठीले उठते हैं और उठते ही चले जाते हैं। हठीले बढ़ते हैं और बढ़ते ही चले जाते हैं। हठीले सागरों को चीरते हुए, आकाश को दीर्ण करते हुए, चट्टानों को फोड़ते हुए विश्व में व्यापते हैं और दिग्विजयी होते हैं। हठीले प्रवाहों के ऊपर चढ़ते हैं, ज्वालामुखियों के मुख पर बसते हैं, अग्नि में तपते हैं, परिस्थितियों को परास्त करते हैं। हठीले जान खो देंगे, दीवारों में चिन जाएंगे, जीवित जल जाएंगे पर अपनी साध को न त्यागेंगे, डरकर न भागेंगे।

तुम्हें राष्ट्रनिर्माण, विश्वोत्थान, धर्मस्थापन, संस्कृति-सम्पादन, चरित्रनिष्पादन, ऐश्वर्यसंसर्जन और अनेक सुरचन के कठिन कार्य करने हैं। तुम्हें करना है वैदिक विश्व का सर्जन और आर्य स्वर्ग का विरचन। अतः तुम ऐसे हठीले, ऐसी हठीली, ऐसे ध्रुव बनो कि राष्ट्र के विविध क्षेत्रों में और विश्व के तुमुल संघर्षों में तुम तिल-भर भी पीछे न हटो। अपना ऐसा स्वभाव बनाओ कि जो प्रतिज्ञा कर ली और जो कार्य आरम्भ कर दिया उसे पूरा किए बिना न दम लेना, न विश्राम करना क्यों कि (अ-प्रति-इतः) पीछे न हटने वाला, इधर से उधर न होने वाला, टस से मस न होने वाला, हठीला ही (धनानि) धनैश्वर्यों को (सम् जयति) विजय करता है।

हठीले, बात के पूरे, प्रतिज्ञा को न त्यागेंगे।
लड़ेंगे डट के संगर में, न डरकर रण से भागेंगे।

२४ अमूर्त

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद् यशः । यजुर्वेद ३२.३

आस्तिक धर्ममूर्तियो !

(यस्य) जिसका (महत् नाम, यशः) बड़ा नाम [और] यश [है] (तस्य) उस[परमात्मा]की (प्रति-मा न अस्ति) प्रति-मा नहीं है ।

प्रति-मा के प्रसिद्ध छह अर्थ हैं : १) मूर्ति, २) माप, ३) सादृश्य, ४) भौतिक सत्ता, ५) बनाने वाला, ६) आकार ।

चित्र वा मूर्ति आकृतिवान् तथा आकारवान् की ही बनाई जा सकती है । प्रभु सर्वव्यापक, निराकार और अरूप है । अतः चित्रकार छायायन्त्र [कैमरा] से उसकी छाया [तसवीर] नहीं ले सकता, न शिल्पकार कल्पना से उसकी मूर्ति बना सकता है ।

चित्र वा मूर्ति बनाने के लिए दूसरी आवश्यकता है माप की । आर्यावर्त अब १,६०० मील लम्बा और १,६०० मील चौड़ा है । चार सौ मील के लिए एक इंच की माप निर्धारित करके हम चार इंच लम्बे और चार इंच चौड़े पत्र [काग़ज़] वा पाषाण पर आर्यावर्त का चित्र [नक्शा] बना सकते हैं । पर प्रभु तो अनन्त और असीम है : अतः उसकी कोई माप निर्धारित नहीं की जा सकती । परिणामतः, उसका चित्र वा उसकी मूर्ति बनाना असम्भव है ।

प्रभु के सदृश भी कोई नहीं । अतः अन्य किसी के सादृश्य से भी उसका चित्र वा मूर्ति बनाना सम्भव नहीं है ।

प्रभु की भौतिक सत्ता भी नहीं है । अतः भौतिक इन्द्रियों से उसका दर्शन वा साक्षात्कार सम्भव नहीं हो सकता और न उसका भौतिक रूप निर्मित वा निश्चित किया जा सकता है । आत्मा द्वारा ही परमात्मा की अनुभूति होती है ।

परमात्मा नित्य और अजर-अमर है। उसका बनानेवाला कोई नहीं। वह तो अजन्मा और स्वयम्भू है।

प्रतिमा नहीं कोई उस प्रभु की।
जिसका बड़ा नाम और यश।

२५ प्रार्थना

विश्वं शृणोति, पश्यति। ऋग्वेद ८.७८.५

पवित्र आत्माओ!

आज हम तुमको एक अतिसरल अनुष्ठान बताएंगे। तुम उसका आज से अभ्यास आरम्भ कर दो। उससे तुम्हारा जीवन दिन-प्रतिदिन, प्रतिसायं, प्रतिप्रातः उत्तरोत्तर शुद्ध, पवित्र, निर्मल, समुज्ज्वल, प्रतिभाशाली और समुन्नत होने लगेगा। उसके सतत अनुष्ठान से तुम शीघ्र ही बड़े निष्ठावान्, श्रद्धोपेत, पवित्र, ईशविश्वासी, धर्मात्मा और परम आस्तिक बन जाओगे। कालान्तर में सहजतया तुम्हारे आत्मा में प्रभु की साक्षात् अनुभूति होगी।

उषा काल में सोकर उठते ही अपनी चारपाई पर आसन लगाकर बैठ जाओ। आँखों के पलक बन्द कर लो। अपनी वृत्तियों को अन्तर्मुख करके अपने मन ही मन अपने पिता परमेश्वर से यह प्रार्थना करो, 'पिता जी! आप परम पवित्र हैं। पवित्र अन्तःकरण में ही आपकी प्रतीति होती है। मेरे अन्तःकरण को अतिशय शुद्ध-पवित्र करके मुझे अपने दर्शन से तृप्त कीजिए। भगवन्! मेरा जीवन सर्वथा धवल और उज्ज्वल हो। प्रभो! मुझे वह मेधा-बुद्धि प्रदान करो जिससे मुझे सत्य की प्राप्ति हो। देव! मुझे जितेन्द्रिय, संयमी, पुरुषार्थी और पराक्रमी बनाइए ताकि मैं अपने देश, धर्म

और जाति की प्रचुर सेवा और साधना करूं । परम पिता ! मुझे ऐसी साधुता और शालीनता दीजिए कि मैं सबका प्यारा और आदरणीय बनूं । आप ही मेरे पिता हो, आप ही मेरी माता हो । आप ही मेरे बन्धु हो, आप ही मेरे भ्राता हो । आप ही मेरे सखा हो, आप ही मेरे त्राता हो । मेरी अंगुलि पकड़कर मुझे चलाइए और सदा सत्य, सदाचार और धर्म के सुपथ पर मुझे आरूढ़ रखिए ।' इसी प्रकार, जब तुम रात्रि को सोने लगो तब भी अपनी चारपाई पर आसनस्थ होकर प्रार्थना करो ।

विश्वास रखो, वह प्रभु (विश्वम्) सब कुछ (शृणोति) सुनता है, सुन रहा है [और] (पश्यति) देखता है, देख रहा है ।

मांगो मिलेगा ।
खट-खटाओ खुलेगा ।

२६ उत्थान

उत्कूलमुद्वहो भव । अथर्ववेद १६.२५.१

विश्व-विभूतियो !

जल उच्च स्थल से निम्न स्थल की ओर बहा करता है । तैरनेवाले साधारणतया प्रवाह के साथ, निम्न स्थल की ओर तैरा करते हैं । परन्तु सिंह आपद्‌ग्रस्त होने पर भी प्रवाह के ऊपर को ओर ही तैरा करता है, नीचे की ओर कदापि नहीं ।

संसार का प्रवाह स्वभावतया उच्च से निम्न की ओर होता है । पर सुवीर निम्न से उच्च की ओर प्रवाहित हुआ करते हैं । सुवीर संसार के प्रवाह को उत्प्रवाहित किया करते हैं । वे मानवजाति को पतन से अभ्यावृत्त [मोड़] करके उत्थान की ओर प्रवृत्त किया करते हैं ।

तुम प्रवाह के साथ बहनेवाले नहीं, प्रवाह के ऊपर चढ़नेवाले बनो। किसी भी काम को तुम इसलिए कदापि न करो कि उस कार्य को अन्य बालक वा पुरुष करते हैं। तुम्हें सोच-विचारकर वही कार्य करना चाहिए जो उचित, धर्मानुकूल, स्वास्थ्यप्रद, योग्य और लाभदायक है।

सिनेमा देखने और सिनेमा की बातें सुनने से विचार और जीवन दूषित होते हैं। दूसरे बालकों को सिनेमाघर जाते देखकर तुम भी वहां जाने का विचार कदापि न करो। तुम्हारी प्रशंसा इस बात में है कि निमन्त्रित और प्रेरित किए जाने पर भी तुम सिनेमा देखने न जाओ और जानेवालों को समझा-बुझाकर वहां जाने से रोको। इसी प्रकार, सिगरेट, पान, तम्बाकू, भंग, शराब, आदि व्यसनों से तुम सदा दूर रहो और अन्यों को उनसे रोको।

अश्लील भाषण, अनुचित व्यवहार और कुचेष्टा कभी प्रतिकार की भावना से भी न करो, अपि तु अन्यों को ऐसा करने से सदा वर्जो। इस प्रकार, तुम प्रवाह के ऊपर चढ़नेवाले और मानवों के प्रवाह को ऊपर की ओर मोड़नेवाले सुवीर बन जाओगे, पतन को रोककर उत्थान करनेवाले महापुरुष हो जाओगे।

(उत्-कूलम्) प्रवाह के ऊपर (उत्-वहः) चढ़नेवाला, तैरनेवाला, (भव) हो।

पतन से तू अपना मुख मोड़।
चढ़ा-चल समुत्थान की ओर।

२७ युक्त भाषण

यद् वदामि मधुमत्, तद् वदामि यदीक्षे। अथर्ववेद १२.१.५८

प्रिय बालो !

बोलना वा भाषण एक कला है, एक विज्ञान है। बोलने वा भाषण के कुछ नियम हैं। यदि तुम इस सूक्ति में बताए नियमों का पालन करोगे तो तुम सुभाषी बन जाओगे और यश-आनन्द पाओगे।

जो कुछ बोला जाए वह मधुवत् हो। **मधुमत्** का अर्थ है मधु-युक्त। मधु नाम शहद का है। मधु पुष्पों का सार, मधुर और सुगन्धित होता है। जो कुछ बोला जाए, उसमें कुछ सार हो। जो कुछ बोला जाए, मधुरता के साथ बोला जाए। जो कुछ बोला जाए, सुगन्धित [सुप्रभावोत्पादक] बोला जाए।

निस्सार, कटु, और दुर्गन्धित [कुप्रभावोत्पादक] बातें बोलने की अपेक्षा तो मौन रहना कहीं अधिक अच्छा है। अयुक्त भाषण से वक्ता और श्रोता, दोनों का समय व्यर्थ नष्ट होता है और लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है।

जो कुछ बोला जाए, वह समय और अवसर के अनुसार बोला जाए। जितना समय दिया गया है उतना ही बोलो। निर्धारित समय के अन्दर अपना भाषण समाप्त कर दो। दिए समय से तनिक भी अधिक बोलना बड़ी लज्जा की बात है और अक्षम्य अपराध है, भाषण का घृणित दोष है।

अवसर के अनुरूप ही सदा बोलो। जो विषय और प्रसंग चलरहा है उससे इधर उधर मत जाओ। विषयान्तर होना मूर्खता का लक्षण है। यथावसर बोलो, और शिष्टता तथा औचित्य के साथ बोलो।

जैसा देखो हो, जैसा और जितना विषय का अनुभव और साक्षात्कार हो वैसा और उतना ही बोलो। जिस समय जो और जितना उचित और आवश्यक है, ठीक वही और उतना ही बोलो। अधिक बोलना अधिक खाने से भी बुरा है।

मैं (यत् वदामि) जो कुछ बोलता हूं, (मधुमत्) मधुयुक्त बोलता हूं। मैं (तत् वदामि) वही बोलता हूं (यत् ईक्षे) जो देखता हूं।

जो कुछ बोलूं, मधुमत् बोलूं ।
मित और उचित-सन्तुलित बोलूं ।

२८ संयम

भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ । ऋग्वेद ६.६४.४

आशापुष्पो !
यह बड़ी सुन्दर सूक्ति है। प्रथम, तुम इस सूक्ति को शब्दार्थ सहित कण्ठस्थ कर लो और इसे यावज्जीवन स्मरण रक्खो। (सत्या समिथा) सच्चे संग्राम (मित-द्रौ) मित-गमन, मिताचार, संयम में (भवन्ति) होते हैं।

अश्व कितना भी सबल और तीव्र हो, यदि उसे जीन और लगाम से संयत न किया जाए तो यात्रा में सहायक न होकर बाधक होता है और सवार को नीचे पटककर भाग जाता है।

साइकिल और मोटर में यदि नियन्त्रक [ब्रेक] न हो तो दुर्घटनाएं हो जाती हैं। रथ के बैलों को यदि रासों द्वारा वश में न रक्खा जाए तो वे रथ को खड्डे में गिरा दें।

मनुष्य के जीवन में भी और मानवसमाज में भी चारों ओर अनेक संग्राम होते रहते हैं, अनेक संघर्ष चलते रहते हैं।

तुम कितना भी चाहो और कितना भी प्रयत्न करो, तुम अपने आपको संग्रामों और संघर्षों से पृथक् नहीं रख सकते। सत्य और असत्य, ऋत और अनृत के युद्ध संसार में सदा से होते आए हैं और सदा होते रहेंगे।

तुम सत्य और असत्य के युद्धों और संघर्षों से बचने का प्रयास न करो, अपि तु असत्य के दुर्गों को ढाने के लिए, सत्य और असत्य के संग्रामों और संघर्षों में सत्य के पक्ष में डट कर युद्ध करो : पर

सत्य के पक्ष में तुम्हें विजय तभी प्राप्त होगी, सच्चे संग्रामों में विजयश्री तुम्हें तभी मिलेगी जब तुम मिताचारी और संयमी बनकर युद्ध करोगे।

मिताचार वा संयम से तात्पर्य है अपने जीवन और अपनी इन्द्रियों का वशीकार करना। मन:संयम की रास वा लगाम से अपनी पांचों कर्मेन्द्रियों और पांचों ज्ञानेन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण रक्खो। इन दश इन्द्रियों को जीवनरथ के अश्व कहते हैं। यह जीवन दशाश्वरथ [दशरथ] है। जो इनको वश में रखता है वही विजयी होता है।

आपा जीते जीत है।
आपा हारे हार।

२६ शोभा

रुचे भव। ऋग्वेद ६.१०५.५

प्य रे बच्चो !
अपने जीवनों को पुष्प के समान शोभनीय बनाओ। वन में कंटीले वृक्षों और झाड़-झंकाड़ों के बीच में एक भी पुष्पों का पौधा हो और उस पर एक भी पुष्प खिलरहा हो तो सबकी दृष्टि उस पुष्प पर ही जाकर ठहरती है। वनभ्रमण की सारी थकान और उदासी उस एक पुष्प की शोभा और सुगन्धि से दूर हो जाती है, और सबके मुख से निकलता है, 'अहा, देखो यहां एक फूल खिलरहा है।' पुष्प के मुख पर मुस्कान और प्रसन्नता है, और उसके हृदय में महक और मिठास, सुगन्धि और मधु [शहद] है। तभी तो वह वन, वाटिका, गृह, उद्यान, आदि में सर्वत्र शोभनीय प्रतीत होता है और मनुष्यों के शिर,

ग्रीवा [गर्दन] तथा नासिका पर सर्वोत्तम स्थान पाता है और समादृत होता है।

तुम भी पुष्प के गुणों को धारण करके पुष्प के समान शोभनीय और समादरणीय बनो। तुम्हारे दो ओष्ठ पुष्प की दो वाह्य पंखड़ियां हैं और उनके अन्तर्निहित, मोतियों के समान चमकीले दांतों की दो लड़ियां [क़तारें] पुष्प की आन्तर पंखड़ियां हैं। तुम सदा प्रसन्नवदन और मुस्काते हुए रहा करो। प्रसन्नवदन और मुस्काता हुआ चेहरा खिले हुए पुष्प के समान शोभनीय होता है और सबको अपनी ओर आकर्षित करता है। पुष्प के समान अपने हृदय में शुद्ध भावनाओं की सुगन्धि और प्रेमरूपी मधु धारण करो। सबके प्रति सद्भाव और स्नेह के साथ वार्तालाप [सम्भाषण] और व्यवहार करो। इस प्रकार सुगन्धित, सुमधुर और शोभनीय पुष्प बनकर, तुम जहां भी उपस्थित होगे वहीं शोभनीय प्रतीत होगे और स्वागत और समादर प्राप्त करोगे। शोभनीय बनकर, गृह, विद्यालय, सभा, समाज, राष्ट्र और संसार की शोभा को बढ़ाओ।

सदा ध्यान रक्खो, वे धन्य हैं जो अपने जीवन से संसार में सर्वत्र शोभावृद्धि करते हैं, वे जघन्य हैं जो अपने जीवन से संसार की शोभा को क्षीण करते हैं।

तू (रुचे भव) शोभा के लिए हो।

संसार यदि कंटीला है तो पुष्प बन के तू।
खिलता, महकता, मधु की सदा वृद्धि करता रह।

३० प्रज्वलन

अग्ने ! समिधानो वि भाहि। ऋग्वेद १०.२.७

परम प्रिय बालको !

समिधाओं में जब अग्नि व्याप जाता है तो वे प्रज्वलित होकर यज्ञवेदि में जगमगाती हैं। काला कोयला अग्नि में पड़कर अग्निरूप हो जाता है, और जगमगाता है। कृष्ण लौह अग्नि में प्रविष्ट होकर हिरण्य [सुवर्ण, कुन्दन] के समान सुदीप्त हो जाता है।

इसी प्रकार, जो व्यक्ति अपनी जीवन-समिधा को परमात्माग्नि में सुहुत कर देते हैं उनके जीवन प्रज्वलित होकर जगमगाते हैं। जो आत्मना परमात्मा में प्रविष्ट हो जाते हैं वे ब्रह्मदीप्ति से प्रदीप्त होकर संसार में चमकते हैं।

कोयले को कितना भी मांजो-धोओ, वह दीप्त न होगा। पर अग्नि में पड़कर वह दीप्त हो जाता है और जब तक अग्नि में रहता है वह दीप्त रहता है। अग्नि से बाहर निकलकर वा अग्नि से पृथक् होकर वह फिर काला हो जाता है।

ऐसे ही, जो आत्मना प्रभु में लीन रहते हैं और प्रभुमय होकर जीते हैं वे प्रज्वलित होकर दिव्य दीप्ति से युक्त रहते हुए संसार में प्रकाश करते हैं।

प्रभु शुद्ध, पवित्र, सर्वशक्तिमान्, परम सुन्दर, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वैश्वर्य और प्रकाशस्वरूप है। तुम प्रभु के दृढ़ विश्वासी और आत्मसमर्पक भक्त बनो। तुम भी शुद्ध, पवित्र, शक्तिमान्, सुन्दर, ज्ञानी, उदार, ऐश्वर्यशाली और प्रकाशमान् हो जाओगे और विश्वगगन में सूर्य के समान विभासित होगे।

विश्वास रक्खो, आत्मा है, और आत्मा ही जीवन है, वास्तविक जीवन है। ईश्वर है, और ईश्वर ही अखिल ब्रह्माण्ड का जीवनदाता और अधिपति है। ईश्वर ही आनन्ददाता है। ईश्वर तुम्हारा परम पिता और माता है और तुम ईश्वर के अमृत पुत्र हो।

जो पुत्र अपने पिता से जितना अधिक अनुरक्त होता है वह उतना ही अपने पिता के प्रसादों को प्राप्त करता है। तुम अपने परम पिता परमात्मा से आत्मना जितने अधिक अनुरक्त रहोगे तुम

उतने ही अधिक ऐश्वर्य विभूतियों से विभासोगे।

(अग्ने) आत्माग्ने ! (सम्-इधानः) समिधावत् प्रज्वलित [होकर] (वि भाहि) जगमगा।

ज्यों कोयला पड़ अग्नि में होता अग्निस्वरूप।
हो विलीन ब्रह्माग्नि में हो जा ब्रह्मस्वरूप।



पाठक से

वेद-संस्थान इस पुस्तक की विषय-वस्तु, लेखनशैली और आकार-प्रकार के बारे में आपके विचारों के लिए आभारी होगा। अन्य कोई सुझाव आप देना चाहें तो उन्हें जानकर भी हमें प्रसन्नता होगी। हमारा पता है : बाबू मोहल्ला, ब्यावर रोड, अजमेर ३०५ ००१, भारत।

बालकों और तरुणों के लिए उपयोगी
तथा शैक्षणिक विषयों पर
स्वामी विद्यानन्द 'विदेह' की कृतियां

भारत के अध्यापकों से (प्रथम भाग)	चतुर्थ संस्करण		०-५० पैसे
भारत के विद्यार्थियों से	षष्ठ संस्करण		रु. १-००
वैदिक बाल-शिक्षा			रु ४.००
प्रथम भाग	सप्तम संस्करण	रु १.००	
द्वितीय ,,	षष्ठ ,,	,, १.००	
तृतीय ,,	चतुर्थ ,,	,, १.००	
चतुर्थ ,,	द्वितीय ,,	,, १.००	
वैदिक स्त्री-शिक्षा (दो भाग)			रु १.६०
प्रथम भाग	तृतीय संस्करण	०.८० पैसे	
द्वितीय ,,	प्रथम ,,	०.८० पैसे	
शिक्षा-शास्त्र [वेदव्याख्या-ग्रन्थ, षष्ठ पुष्प]	द्वितीय संस्करण		रु २.००
संस्कृत-शिक्षा (दो भाग)			रु १.२०
प्रथम भाग	पंचम संस्करण	०.४० पैसे	
द्वितीय ,,	चतुर्थ ,,	०.८० पैसे	
संस्कृत-स्वयं शिक्षक (दो पुष्प)			रु ३.५०
प्रथम पुष्प	चतुर्थ संस्करण	रु १.५०	
द्वितीय ,,	द्वितीय ,,	रु २.००	

'विदेह'-वाङ्मय की विस्तृत सूची निम्न पते से निःशुल्क मंगाएं :

वेद-संस्थान, बाबू मोहल्ला, ब्यावर रोड, अजमेर ३०५००१



जन्म : १५ नवम्बर, १८९९ ई. । निधन : ५ मार्च, १९७८ ई. । वेद-संस्थान (अजमेर, दिल्ली) के संस्थापकाध्यक्ष । वेदों के मर्मज्ञ व्याख्याकार, चिन्तक, कवि और संन्यासाश्रमी सन्त । वाणी में अद्भुत माधुर्य और हृदय को छू लेने की क्षमता । व्यक्तित्व जो तत्काल आकर्षित कर लेता था आत्मीयता, स्नेह, सरलता से । सतत कर्मरत, प्रतिक्षण साधनामय, भक्ति और निष्ठा से ओत-प्रोत जीवन । लेखन की शैली ललित, प्रसादगुणयुक्त, अनावश्यक विस्तार से रहित ।

'विदेह' का जीवन वेद और योग को समर्पित था । उन्होंने लोहे के चने समझे जानेवाले वेद को आबाल-वृद्ध, प्रत्येक हिन्दी-भाषी के लिए अतिसरल और रोचक, दैनंदिन जीवन में उपयोगी और प्रेरकग्रन्थ बनाने में अभूतपूर्व और आश्चर्यकारी सफलता पाई है । उनकी वेद-व्याख्या वेद को मानव और मानवता की अनिवार्य आवश्यकता के रूप में प्रस्तुत करती है, वेद के वेदत्व को निखारती है और उसे जीवन-ग्रन्थ, मानवधर्म-शास्त्र के रूप में प्रस्तुत करती है ।

'विदेह' के चिंतन से जीवन का कोई भी पक्ष अछूता नहीं रहा है । संन्यासी और योगी होने पर भी, उन्होंने परिवार और गृहस्थ-जीवन पर पर्याप्त चिंतन, प्रवचन और लेखन किया है । 'वैदिक बाल-शिक्षा' पुस्तकमाला में वेद की चुनीदा सूक्तियों और सरल ऋचाओं के आधार पर बच्चों को संबोधित, जीवनोपयोगी, उदार मानवता के पोषक १०६ उपदेश 'विदेह' की अपनी अनूठी शैली में संकलित हैं । इन शिक्षाओं का लाभ बच्चे तो लेंगे ही, युवक, प्रौढ, वृद्ध भी ले सकते हैं क्यों कि वेद मानवमात्र के लिए हैं, और अच्छी बातें सबके लिए लाभकर होती हैं ।

[redacted]